॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ क्षुरिकोपनिषत्॥

विषय सूची

॥अथ क्षुरिकोपनिषत्॥ 3
क्षुरिका उपनिषद 4
शान्तिपाठ 12

॥ श्री हरि ॥

॥अथ क्षुरिकोपनिषत्॥

॥ हरिः ॐ ॥

कैवल्यनाडीकान्तस्थपराभूमिनिवासिनम् ।
क्षुरिकोपनिषद्योगभासुरं राममाश्रये ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ क्षुरिकोपनिषत्॥

क्षुरिका उपनिषद

ॐ क्षुरिकां सम्प्रवक्ष्यामि धारणां योगसिद्धये ।
यं प्राप्य न पुनर्जन्म योगयुक्तस्य जायते ॥ १॥

योग की सिद्धि हेतु मैं धारणा रूपी छुरिका के सम्बन्ध में यहाँ वर्णन करता हूँ, जिसे प्राप्त करके योग युक्त हो जाने वाले मनुष्य को पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता अर्थात् वह आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१॥

वेदतत्त्वार्थविहितं यथोक्तं हि स्वयंभुवा ।
निःशब्दं देशमास्थाय तत्रासनमवस्थितः ॥ २॥

कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मात्राद्वादशयोगेन प्रणवेन शनैः शनैः ॥ ३॥

पूरयेत्सर्वमात्मानं सर्वद्वारं निरुध्य च ।
उरोमुखकटिग्रीवं किञ्चिद्भूदयमुन्नतम् ॥ ४॥

प्राणान्सन्धारयेत्तस्मिनासाभ्यन्तरचारिणः ।

भूत्वा तत्र गतः प्राणः शनैरथ समुत्सृजेत् ॥ ५॥

जैसा कि उस स्वयंभू का कथन है और जो भाव वेद के तत्त्वार्थ में सन्निहित है, तदनुसार शब्दरहित स्थान में इसके लिए उचित आसन में स्थित होकर, जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने संकल्प के द्वारा समेट लेता है, वैसे ही मन और हृदय (के भावों) को निरुद्ध करे तथा प्रणव की बारह मात्राओं के माध्यम से धीरे-धीरे प्राण रूप सर्वात्मा को अपने अन्दर पूरित करे । इस समय (प्राण के) सभी द्वारों को रोक कर छाती, मुख, कमर, गर्दन तथा हृदय को कुछ उन्नत रखे । इस स्थिति में नासिका द्वारा संचरित प्राण को सभी स्थानों में धारण करे । जहाँ-तहाँ प्राणों का संचरण हो जाने पर फिर धीरे-धीरे वायु को बाहर छोड़ दे ॥२-५॥

स्थिरमात्रादृढं कृत्वा अङ्गुष्ठेन समाहितः ।
द्वे गुल्फे तु प्रकुर्वीत जङ्घे चैव त्रयस्त्रयः ॥ ६॥

द्वे जानुनी तथोरुभ्यां गुदे शिश्ने त्रयस्त्रयः ।
वायोरायतनं चात्र नाभिदेशे समाश्रयेत् ॥ ७॥

धारणा युक्त उक्त प्राणायाम का अभ्यास दृढ़ हो जाने पर, पूरी सावधानी के साथ पैर के अंगूठे सहित टखनों में दो-दो बार, जंघाओं या पिंडलियों में तीन-तीन बार, घुटनों और ऊरु (जाँघों) में दो-दो बार तथा गुदा एवं जननेन्द्रिये में तीन-तीन बार प्राणों के संचार की

धारणा करे । इसके बाद नाभि प्रदेश में प्राणों की धारणा करे ॥६-७॥

तत्र नाडी सुषुम्ना तु नाडीभिर्बहुभिर्वृता ॥
अणु रक्तश्च पीताश्च कृष्णास्ताम्रा विलोहिताः ॥ ८॥

वहाँ पर इड़ा, पिङ्गला आदि दस नाड़ियों से आवृत सुषुम्ना नाम की ब्रह्म नाड़ी स्थित है। वहाँ भी अनेक नाड़ियाँ स्थित हैं, जो अति सूक्ष्म, लाल, पीली, काली एवं ताँबे के रंग की हैं ॥८॥

अतिसूक्ष्मां च तन्वीं च शुक्लां नाडीं समाश्रयेत् ।
तत्र संचारयेत्प्राणानूर्णनाभीव तन्तुना ॥ ९॥

वहाँ पर जो नाड़ी अति सूक्ष्म, पतली एवं शुक्ल वर्ण की है, उसका आश्रय प्राप्त करना चाहिए। जिस प्रकार ऊर्णनाभि (मकड़ी) अपनी लार के तन्तुओं द्वारा गतिशील होती है, उसी प्रकार योगी को उस नाड़ी मण्डल में प्राणों को संचरित करना चाहिए ॥९॥

ततो रक्तोत्पलाभासं पुरुषायतनं महत्
दहरं पुण्डरीकं तद्वेदान्तेषु निगद्यते ॥ १०॥

तद्भित्त्वा कण्ठमायाति तां नाडीं पूरयन्यतः ।
मनसस्तु क्षुरं गृह्य सुतीक्ष्णं बुद्धिनिर्मलम् ॥ ११॥

उस के बाद वेदान्त में जिसे दहर या पुण्डरीक कहा गया है, वह महत् आयतन वाला हृदय क्षेत्र है। वह क्षेत्र रक्त कमल की तरह सदा प्रकाशित रहता है। उस (हृदयक्षेत्र) के बाद नाड़ियों को पूरित करता हुआ (प्राण-प्रवाह) कण्ठ में आता है। उसके बाद मन:क्षेत्र और उससे परे गुह्य, निर्मल और तीक्ष्ण बुद्धि का स्थान है ॥१०-११॥

पादस्योपरि यन्मध्ये तद्रूपं नाम कृन्तयेत् ।
मनोद्वारेण तीक्ष्णेन योगमाश्रित्य नित्यशः ॥ १२॥

इन्द्रवज्र इति प्रोक्तं मर्मजङ्घानुकीर्तनम् ।
तद्ध्यानबलयोगेन धारणाभिर्निकृन्तयेत् ॥ १३॥

ऊर्वोर्मध्ये तु संस्थाप्य मर्मप्राणविमोचनम् ।
चतुरभ्यासयोगेन छिन्देदनभिशङ्कितः ॥१४॥

इस प्रकार पैरों के ऊपर जो मर्म स्थान हैं, उनके नाम-रूप का चिन्तन करे । नित्य योगाभ्यास का आश्रय लेकर तीक्ष्ण मन के द्वारा जंघाओं से लगा हुआ जो 'इन्द्रवज्र' नामक क्षेत्र है, उसका छेदन करे। वहाँ उरुओं के बीच मर्म स्थलों का विमोचन करने वाले प्राण को ध्यान बल और धारणा के योग से स्थापित करके योगाभ्यास द्वारा मन की तीक्ष्ण धारणा से, नि:शंक होकर (मूलाधार से हृदय पर्यन्त) चारों मर्म स्थलों का छेदन करे ॥१२-१४॥

ततः कण्ठान्तरे योगी समूहन्नाडिसञ्चयम् ।
एकोत्तरं नाडिशतं तासां मध्ये वराः स्मृताः ॥ १५॥

सुषुम्ना तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी ।
इडा तिष्ठति वामेन पिङ्गला दक्षिणेन च ॥ १६॥

इसके बाद योगी कण्ठ के अन्दर स्थित नाड़ी समूह में प्राणों को संचरित करे। उस नाड़ी समूह में एक सौ एक नाड़ियाँ हैं । उनके मध्य में पराशक्ति स्थित है । सुषुम्ना नाड़ी परम तत्त्व में लीन रहती है और विरजा नाड़ी ब्रह्ममय है । इड़ा का निवास बायीं ओर है और पिङ्गला दाहिनी ओर स्थित है ॥१५-१६॥

तयोर्मध्ये वरं स्थानं यस्तं वेद स वेदवित् ।
द्वासप्ततिसहस्राणि प्रतिनाडीषु तैतिलम् ॥ १७॥

इन (इड़ा एवं पिङ्गला) दोनों नाड़ियों के मध्य में जो श्रेष्ठ स्थान है, उसे जो जानता है, वह वेद (शाश्वत ज्ञान) को जानने में समर्थ होता है। सभी सूक्ष्म नाड़ियों की संख्या बहत्तर हजार बतायी गयी है, जिन्हें तैतिल कहा गया है ॥१७॥

छिद्यते ध्यानयोगेन सुषुम्नैका न छिद्यते ।
योगनिर्मलधारेण क्षुरेणानलवर्चसा ॥ १८॥

छिन्देन्नाडीशतं धीरः प्रभावादिह जन्मनि ।

जातीपुष्पसमायोगैर्यथा वास्यति तैतिलम् ॥ १९॥

ध्यान योग के द्वारा समस्त नाड़ियों का छेदन किया जा सकता है; किन्तु एक सुषुम्ना ही ऐसी है, जिसका कि छेदन नहीं किया जाता। धीर पुरुष को इस जन्म में आत्मा के प्रभाव से अग्निवत् तेजोमयी एवं योग रूपी निर्मल धार से युक्त (धारणा रूपी) छुरी से सैकड़ों (सभी) नाड़ियों का छेदन करना चाहिए। इससे नाड़ियाँ उसी तरह से सुवास युक्त हो जाती हैं, जिस तरह जाती (चमेली) के पुष्प से तिल (तैल) सुवासित हो जाते हैं ॥१८-१९॥

एवं शुभाशुभैर्भावैः सा नाडीति विभावयेत् ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते पुनर्जन्मविवर्जिताः ॥ २०॥

इस प्रकार योगी को चाहिए कि वह शुभाशुभ भावों से युक्त विभिन्न नाड़ियों को समझे। उनसे परे सुषुम्ना नाड़ी में धारणा स्थिर करने से योगी पुनर्जन्म से रहित होकर शाश्वत परमब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥२०॥

तपोविजितचित्तस्तु निःशब्दं देशमास्थितः ।
निःसङ्गतत्त्वयोगज्ञो निरपेक्षः शनैः शनैः ॥ २१॥

जिस व्यक्ति ने तप के द्वारा अपने चित्त को जीत लिया है, वह व्यक्ति शब्दरहित, एकान्त, निर्जन स्थान में स्थित होकर निःसङ्ग तत्त्व के योग का अभ्यास करे तथा शनैः-शनैः निरपेक्ष हो जाए ॥२१॥

पाशं छित्त्वा यथा हंसो निर्विशङ्कं खमुत्क्रमेत् ।
छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते सदा ॥ २२॥

जिस प्रकार बन्धन-जाल को काटकर हंस नि:शंक होकर आकाश में गमन कर जाता है, उसी प्रकार योगी मनुष्य इस योग के अभ्यास द्वारा सभी बन्धनों के कट जाने के पश्चात् बन्धन-मुक्त होकर संसार-सागर से सदा के लिए पार हो जाता है ॥२२॥

यथा निर्वाणकाले तु दीपो दग्ध्वा लयं व्रजेत् ।
तथा सर्वाणि कर्माणि योगी दग्ध्वा लयं व्रजेत् ॥ २३॥

जिस प्रकार निर्वाण काल में (बुझने के समय) दीप ज्योति सब कुछ जलाकर स्वयं परम प्रकाश में लीन हो जाती है, वैसे ही योगी मनुष्य अपने सभी कर्मों को योगाग्नि से भस्म करके अविनाशी परमात्म तत्त्व में लीन हो जाता है ॥२३॥

प्राणायामसुतीक्ष्णेन मात्राधारेण योगवित् ।
वैराग्योपलघृष्टेन छित्त्वा तं तु न बध्यते ॥ २४॥

वैराग्य रूपी पत्थर पर इस प्राणायाम द्वारा घिसकर तीक्ष्ण की गयी धारणा रूपी छुरी से संसार के सूत्रों के काटने वाले योगी को सांसारिक बन्धन बाँध नहीं पाते ॥२४॥

अमृतत्वं समाप्नोति यदा कामात्स मुच्यते ।
सर्वेषणाविनिर्मुक्तश्छित्त्वा तं तु न बध्यत इत्युपनिषत् ॥

जब वह कामनाओं से छूट जाता है तथा एषणाओं से रहित हो जाता है, तभी अमृतत्व को प्राप्त कर सकता है और पुन: बन्धनों में नहीं बँधता । यही उपनिषद् है॥२५॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ इति क्षुरिकोपनिषत्॥

॥ क्षुरिका उपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥